कुमारिल भट्ट

परमानन्द

विभूति प्रकाशन

के–14 नवीन शाहदरा दिल्ली-110032

मूल्य तीस रुपये / संस्करण 1989 / प्रकाशक विभूति प्रकाशन बे-14, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032 / मुद्रक अरिहन्त प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032

KUMARIL BHATTA by Parmanand Rs 30 00

भूमिका

पाचवी शताब्दी से लेकर लगभग नवमी शताब्दी का समय भारत के उस आध्यात्मिक पतन का समय था जिसका कुफल इस राष्ट्र को परतन्त्रता के रूप में इस शताब्दी तक भोगना पड़ा है।

छठी सातवीं शताब्दी तक तथागत बुद्ध का सरल, सर्वबोधगम्य, तथा आचार-प्रधान धर्म अपना मूल स्वरूप छोड़ चुका था, राज्याश्रय प्राप्त कर उच्छृंखल हो चुका था, संघ शक्ति के कारण शक्ति की चरम सीमा को छूता हुआ समुद्र पारीय देशों में भी अपनी विजय ध्वजा फहरा चुका था और अब न्यायशास्त्र की प्रखर तलवार लेकर भारतवर्ष से वैदिक धर्म को निर्मूल कर देने के लिए प्राण की बाजी लगा रहा था। अब बौद्ध धर्म सर्व सुलभ, सर्वबोधगम्य और आचार प्रधान न होकर जटिल मत-मतान्तरयुक्त और आचार्यप्रधान किन्तु आचारहीन हो चला था। महायान सम्प्रदाय वैदिक कर्मकाण्ड के जवाब में तन्त्र मन्त्र के आध्यात्मिकता शून्य एन्द्रिय सुख प्रधान स्थूलाचारों को प्रचलित करने लगा था जिसका मूर्त विकृत और भ्रष्ट रूप लेकर मन्त्रयान, वज्रयान और सहजयान जैसे बौद्ध धर्म के उप सम्प्रदाय समस्त भारतवर्ष को झकझोरते हुए व्यभिचारवाद के पर्याय-वाची बन रहे थे। ज्ञातव्य है कि यद्यपि मन्त्र तन्त्र की ऐतिहासिक परम्परा वेदों तक पहुँचती है किन्तु उनको तड़काला भड़काला और ऐन्द्रिय सुखभोगी रूप बौद्धों ने ही दिया था। आगे चलकर 'सहजयान' की सहजता केवल ऐन्द्रिय सुखों में ही सिकुड़ कर रह गई थी। मद्य और मैथुन मुक्ति के साधन बन रहे थे।

वेद, आचार, यज्ञ और आचार्यप्रधान वैदिक धर्म भी समुचित वेद शिक्षणा-भाव, वेदनिन्दकों के अबाध प्रहार, शास्त्रोपेक्षण, संगठनहीनता, पुनर्वाच्यता, आडम्बरपूर्णता, समर्थ आचार्यों की नगण्यता इत्यादि कारणों से शनैः शनैः नष्ट-भ्रष्ट प्राय हो चला था। जीवमात्र के लिए दया, रक्षा और पोषण का लक्ष्य रखने वाले वैदिक धर्म के अनुयायी भी आचार विचार-शून्य ऐन्द्रिय सुख प्रधान तन्त्र मन्त्र-युक्त हो रहे थे। पंचमकार को सगर्व अपना रहे थे और उद्घोष कर रहे थे—वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति।

सवत्र बौद्ध और वदिक न्याय म द्वद्व की आधी चल रही थी। जमाना आचरण का नही केवल सिद्धात का होकर रह गया था। आचारहीनता के उस माहौल म समचा देश ढालने लगा था और एक एक कर सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक राष्ट्रीय और मानवीय आदश टूटने लगे थे।

उपयुक्त स्थिति केवल बौद्ध धम या वदिक धम के लिए ही नही अपितु सम्पूण भारतवष क लिए खतर की घटी थी। बौद्ध धम से निराश जन साधारण की कातर दृष्टि वदिक धम की आर जाती थी किन्तु आश्वस्त नही हो पाती थी। एसी विकट परिस्थिति म भारतीय जनमानस निरीह भाव से प्रश्न उठाने लगा था—

'किम करोमि क्व गच्छामि
को वेदानुद्धरिष्यति ?

(क्या करू ? कहा जाऊ ? कौन वेदो का उद्धार करगा ?)

जनमानस की उपयुक्त जिज्ञासा के दैवी समाधान के रूप म ही इस काव्य के चरित नायक भगवत्पाद् कुमारिल भट्ट का आविर्भाव हुआ था।

यद्यपि इनकी प्रमाणित जीवनी अभी तक अनुपलब्ध है, फिर भी स्फुटक रूप से इनकी चर्चा शास्त्रीय पुस्तको म मिलती है। गुरु परम्परा स प्राप्त तथ्यो के आलोक मे एव जनश्रुति के आधार पर हम इतना अवश्य जानते ह कि आचाय भट्ट वदिक वाङमय के उदभट विद्वान तो थे ही आस्तिक और नास्तिक शास्त्रो क भी पूण ज्ञाता थे। वे मीमासा सूत्र पर शबर स्वमी द्वारा लिखित भाष्य के प्रथम और मुख्य व्याख्यानकर्त्ता थे। मीमासा दशन म भट्ट मत के प्रवतक कुमारिल भट्ट ही थे। इन्होने निम्नलिखित पाच ग्रथो की रचना की थी—

(1) श्लोक वार्तिक, (2) तत्र वार्तिक, (3) टुप्टीका, (4) वृहट्टीका और (5) मध्यटीका। अन्तिम के दो ग्रथ सम्प्रति अनुपलब्ध है।

मण्डन मिश्र, प्रभाकर मिश्र, उम्बेक (भवभूति) आदि इनक प्रसिद्ध शिष्य थे।

कहा जाता है कि बौद्ध न्याय की शिक्षा के लिए इन्ह बौद्ध बनना पडा था किन्तु शिक्षा समाप्ति के बाद उन्हान पुन वदिक धम स्वीकार किया था और राजा सुधन्वा के दरबार म वैदिक धम का प्रतिनिधि बनकर बौद्ध धम के प्रतिनिधि अपन बौद्ध न्याय के गुरु का पराजित किया था। गुरु को अपमानित करना वैदिक धम म बहुत बडा पाप माना जाता है और उस पाप का प्रायश्चित तुषाग्नि (धान की भूसी की आग जो बहुत धीर धीरे जलाती है) म तिल तिल जलकर कुमारिल भट्ट ने किया था।

वस्तुत जगदगुरु 'नकराचाय श्री अपनी सफलता के लिए कुमारिल भट्ट के आभारी थे। क्योंकि उन्होंने पहले ही अपने तेज से अवैदिक मतों को लडखडा दिया था। यही कारण है कि शकराचाय ने श्री भट्ट को अपने शास्त्रों म भगवत-पाद विशेषण से गुरुवत समादृत किया है।

वदिक वाडमय के पुजारी, प्राच्य पाश्चात्य दशनों के अध्येता और सहृदय मवि कवि डॉ० परमानन्द जी की यशस्विनी लेखनी ने कुमारिल भट्ट जैसे तपस्वी, वैदिक और दाशनिक नायक पर ललित और ज्ञानवधक काव्य की सृष्टि कर, केवल राष्ट्री भाषा हिन्दी की ही नही अपितु सम्पूण भारतीय वाडमय की श्रीवृद्धि की है क्योंकि श्री कुमारिल भट्ट पर यह सवप्रथम काव्योदगार है।

—कमलेश कुमार मिश्र

प्रधानाचाय
गा० गि० स० महाविद्यालय
बारथ्यारपुर, पटना

क्रम

प्रथम सर्ग

प्रथम सर्ग

बढ़ कर बल आततायियों का,
चूम रहा था नीला अम्बर,
वृत्तियां आसुरी खड़ी घेर,
गर्जन करती उच्च-उच्च स्वर।

अम्बर घेरे कलुष-बदलियां,
बरसाती जल-गरल, धरा पर,
सदाचार का बीज नष्ट था,
अनाचार-तरु हरा-भरा कर।

दया-अहिंसा, मूल धर्म का,
उन्मूलन कर अट्टहास भर,
क्रूरा कृत्या नाच रही थी,
देवों का सर्वस्व नाश कर।

असुर-पुरोधा, वसा मांस से,
प्रज्वलित कर रहे मख पावक,
मां जगदम्बा को अर्पण कर,
काट रहे शत छागन-शावक।

वेदों में हिंसा-पाठ, पढ़ा
धूर्त, स्वार्थ-साधन में तत्पर,
बिछा रहे सीधे-सादों पर,
जाल सुनहला सविधि सुदृढ़कर।

हिंसा नहीं वैदिकी-हिंसा
पाखडी धूर्तो का प्रचार,
मिटा चुका था श्रुति-श्रद्धा-जल,
वाममार्गी का भ्रष्टाचार।

सुरा-मास की, पावन मख मे
पच मकारी आहुति देते,
नग्न नाच व्यभिचार-निवेदित,
प्रश्रय शील हरण का लेते।

अगणित मदिर, देवदासियो
से सेवित, सज्जित पूजा घर,
किसकी चर्चा, किसकी पूजा ?
काम वासना तृप्त रहे कर।

वह उपासना, ज्ञान, कर्म की
पावन शुचि वाणी श्रुति-सम्मत,
कल्मषता मे पगी उगलती,
ज्वाला, जलती, जगती प्रतिहत।

स्वार्थ साधना एक कल्पना
तृषा पिपासा बढती जाती,
विषय-वासना-ज्वराक्रान्त जन,
क्रोध लोभ से कुठित छाती।

ईर्ष्या-द्वेष मोह माया का
पावक जलता धरणी जल-जल,
हिंसा जलन चरम सीमा पर
अपने मे लडते मानव दल।

जगती की दीवार भखर कर,
ढहती प्रलय महाज्वाला मे,
धर्म चक्र की टूट तीलिया,
वहती कलुष-स्रवित-नाला मे।

हिंसा-अनाचार का पानी,
गरल सिंधु का रूप भयकर,
ताल-तरगित - उत्थित -गर्जन,
फाड रहा देवो का अम्बर।

मन्दिर की दीवार, शिलाओ,
औ पीठा पर काम-चित्र घन,
नग्न यौन, मनसिज रेखाङ्कित,
शीलहरण, व्यभिचार प्रदशन।

कामोद्दीपक चित्र, भित्ति पर,
रग-मच सगमर्मर भूतल,
सज्जित सेवित सुरा-सुदरी,
नृत्य गानमय मदिर का छल।

मदिर मे भगवान बने जड
भगवत्तत्त्वो का व्याजविनय,
देख-देख यह रसा, रसातल,
गई न क्यो होता यह सशय?

तमोगुणी तत्त्वो की पूजा,
तमोगुणी सागर मे मज्जन,
तमोगुणी समसाध-कूप मे,
तमोगुणी जीवन का अर्पण।

अश्वमेध गोमेध-नाम पर,
श्रुति को साक्षी हिंसा का कर,
गढ रहे नया अध्याय लोक मे,
स्वर्थी - धूतराज - पडित - वर।

कोलतार पकिल सर से क्या
कोमल कमल खिलेगा बिन रवि
सभव है क्या बिन प्रकाश के,
उदित हुई सुदर-रजित छवि?

तम का पुतला सलिल स्नेह से
पालित, पाता प्राण पवन से,
विविध-रंग रंजित रविकर से,
गिरा गीत पा नाद गगन से।

दया-अहिंसा-स्नेह भाव से
रीता मानव, नाश प्रहर का,
मान करेगा, मृत्युवरण कर,
फिर कल्याण कहो किस घर का ?

जीव जीव का भोजन कह कर
हिंसा का प्रतिपादन करते,
उच्छृंखल मानव को कर कर,
वंचक क्या उन्माद न भरते ?

जीव जीव का भोजन तो क्या
मार काट पर जीना होगा ?
हिंस्र जीव-सा मानव को भी,
लहू निबल का पीना होगा ?

गर्भाश्रित वह कलल बिंदु, पल
नवमास बिना आता भू पर,
जननी फूली नहीं समाती,
बलि बलि जाती शिशु को छूकर।

स्नेह कलश, दो पयस-सुधा से
पूरित रोम, हुष वश खाते,
नव शिशु के मृदु अधर चाप से,
स्रवित सुधा पर शिशु पल जाते।

कण-कण-जीवन दान रही कर,
मान वत्सला प्यार लुटा कर
यौवन सुख-सौंदर्य-दान दे
पाल रही शिशु को सुख पाकर।

यही प्रकृति की भाषा अंकित,
पन्नो पन्ना मे स्पष्ट उद्धरण,
स्नेह - भरी, उत्सग- भावना,
मरमर कर भरती, नव जीवन।

लघु-लघु जीवन, घटक घटक की,
एक एक बस एक कहानी,
पल-पल, जीवन दान हो रहा,
सुधा स्नेह का बहता पानी ।

वृद्धा जननी मरणासन्ना,
कुशल मनाती सुत का अपने,
स्वगपुरी के सौख्य न माने,
भाते उसका घर के सपने।

परहित जीवन, सुजन दान कर,
मूल्य बढा देते जीवन का,
क्षमा दया की मूर्ति बने वे,
सिन्धु लाघते ज्वलित-अनल का ।

ब्रह्मचय और त्याग-तपस्या,
का अनुशीलन कर मनीषि गण,
मृत्यु जीत कर अमर बन गये,
हाय ! न आवेगा क्या वह क्षण ?

पाखड वितडावाद बढा,
स्वार्थान्ध धम के सचालक,
मन्दिर गड अज अनाचार का,
कहा छिपे हो हे जगपालक !

अजा भेड खेचर वनचर का,
यज्ञाहुति मे प्राण विसजन,
अश्व मेध गोमेध-नाम पर,
छीन रहे प्राणी का जीवन।

हिंसा कर निर्बल जीवो की,
नर-क्रूर कठोर नृशस बने,
नर मेध, नाम पर मानव की,
हत्या करने पर आज ठने।

शिशु निरीह कोमल-तन भी,
चढ देव पर जगदम्वा पर,
प्रलय न होता, क्या भविष्य मे,
होगा ? हाय रहे हम क्या कर ?

रही न अब उत्सग भावना,
रही न अब कल्याण कामना,
रही न अव मानव मानवता
रही स्वाथमय कलुष भावना।

हाय वेद की मिटी प्रतिष्ठा
धम - भित्ति ढह रही त्वरित गति,
स्मृति की वाणी सदाचारमय,
हुई तिरस्कृत, कैसी दुमति ?

वणाश्रम की यज्ञ-भूमि अब
असुर पुरोधा का कलुषित थल,
वेदो का नव - भाष्य खडा कर,
खेल रहे जीवन से कर छल।

आज पराजित राम, विजय की
माला रावण गल - शोभित लख,
सदाचार की प्रतिमा सीता
रो रही शून्य पथ भटक-विलख।

हिंसा भय घबडाई गौवे,
सूखे नवनीत दूध घृत स्रोत,
बहती है शोणित की, धारा
धरणी के मुख पर कलुष, पोत।

रोम-रोम कम्पित रौरव के
ज्वाला-क्रन्दन-औ कराह से,
अट्टहास करती पिशाचिनी,
घृणामयी उन्मद-उछाह से।

जलते शव पर दंष्ट्र गड़ाये
कापालिक - कपाल मे मद भर,
छाक रहे मसान मे बैठे,
तम-निशीथ की अन्ध-अभा पर।

धिक् कैसा तप ? कौल तार की
जलती आभा काली - काली,
निगल जायगी अखिल-सृजन को,
यह नागिन, असुरो की पाली।

धरणी, काप उठी गुहराई,
हे दयासिंधु ! दो शरण-शरण,
त्राहि-त्राहि, इस नाश-प्रहर मे
जल रही आज वसुधा कण-कण।

असुर-भार से धरा-क्रान्त यह
भू पर उतरो कल-कौशल बन,
धर्म-तत्त्व सस्थापन कर दो,
कर दो विनष्ट दुष्कृत-जीवन।

कामादि - दोप - पीडित जन मे
तमसान्ध - धूम की घुटन भरी,
अद्ध - सास, ज्वाला असीम,
हे देव ! धरा अव मरी-मरी।

सृजन विधायक, वधु-सृजन के
जीवन हे ! जीवन - जीवन के,
उतरो स्वर भू पर भू रक्षक,
युग-धारक नाशक-दुजन के।

कुमारिल

जनमानस कल्मष - छल - पूरित
श्रुति-पथ सदाचार - अवरोधक,
दुर्वृत्तो मे पले मच से,
महाप्रलय ये भ्रान्त प्रबोधक।

दूरित कर दुर्वृत्त, ज्योति दो
ज्ञान भरो, कल्याण करो हे,
सास-सास पर दीपावलि - जल,
धूमिल नभ मे प्राण भरो हे।

द्वितीय सर्ग

द्वितीय सर्ग

गगन-नक्षत्रो, सप्त - ऋषियो
मे मच गई थी होड
उतर नभ से भूमि भारत पर
आने को रक्षा - हित।

गढने लगे विचित्र मूर्ति भव्य-
कौशल - कला - भर - भर
अपनी शत - ज्योतिया - एक कर
सुविशिष्ट केन्द्र केन्द्रित।

काम - क्रोध - लोभ - मोह् - सेवित
प्रचड - सूय से प्रखर
अगार पर खडे, असुरो खलो
का मान - भजन - हित

कर गये अनथ, विविध विधि-
अनाचार फैला - फैला
धरा पर वितडा वादी
स्वार्थान्ध - प्रमादी पडित।

अमर-ज्योति - बिन्दु आकलित - कल
प्रखर - प्रभा - तेज उदित
'चद्र गुण' यज्ञेश्वर - गृह
भट्ट कुमारिल सुत सुविदित।

उत्पन्न बाल, अति - मेधावी
धरणी, प्रमुदित, मंडित
सौम्य सुधा की स्नेह मूर्ति, मुख
अरुणोदय - रश्मि - ज्वलित।

शिशु चन्द्र-कान्त सूर्य-कान्त मणि
द्युति - मग्न श्रुतिशास्त्र - धर
देवा के यज्ञ कुंड से
आविर्भूत, प्रज्ञा प्रखर।

हिम गिरि शीतल सुबुद्ध अविकल,
गंभीर सिंधु सक्षम धृति धर
अतुलित प्रकाश - पुंज एक वह
अवतरित धरा-तल पर।

उपनयन संस्कार शुचि - शोभित
वह द्वादश - वर्षीय - बाल
काशी पहुंचा, वेद-अध्ययन - हित,
सुंदर - नगरी विशाल।

ज्योति धृत सुमंडित मुख मंडल-
प्रभा देख चकित सुजन
शत पूछते 'पिता कौन'?
हो कौन ? किसके लाल ?

मुंज-मेखला, कोपीन कटि,
मुंडी, गोखुर शिखा शिखर
लसित पादुका चरण, बालगति,
रुचिर दंड पलास, कर।

भव्य भाल, त्रिपुंड शुचि शोभित,
वह ब्रह्मचर्य व्रत - धर
गुरु समीप विनीत नत पहुंचा
स्पर्श चरण वन्दन कर।

शिव-त्रिशूल सुस्थित विश्वनाथ
सृष्टि - कौतुक - उद्धरण
अद्वितीय - विचित्र - संग्रह - गृह
कला - ज्ञान - अलंकरण।

ज्यों एक राम में लय विराट
त्यों काशी में सब धन
विद्या-कला विभूति - ज्योति का
यह लघु - पुर जग - दर्शन।

व्यापक विराट - विलग - स्वयं
शंकर लघु बन सोते
जटा - लटा बिखरा गंगा में,
स्नात मलिन तन, धोते।

हरिश्चन्द्र-नृप त्याग, राज्य धन
बिके इसी शिव पुर में,
शरण न मिलती कहीं जिसे, वे
यहां चैन से सोते।

देव - सरीखे - सुजन - पंडितों
ने डेरा डाला जब,
गुड़ की मिठास पर चींटी बन
असुर दौड़ आये तब।

असुर - देवता मिल न रह सके,
देवासुर - रण - भैरव
उदय - अस्त युग छोर मिलन में
काशी कुठिन, रौरव।

अब न शान्ति मिलती इस पुर में
भीषण - ताण्डव - नर्तन
पाखंडी - धूर्तों का मेला
धर्म - तत्त्व का - खंडन।

कुमारिल भट्ट 2/21

हिरनाकुस-से असुर अनेको
फैलाते प्रमाद नव
सर्व - शक्ति सबसे बढकर
हम है कहते, लघुजन ।

ईश्वर का अस्तित्व शून्य मे
उद्घोष, बौद्ध - सम्मत ।
हिसा वैदिक धर्म बोलता
भ्रम हत - विवेक सदसद् ।

लुप्त सनातन धर्म आज फिर
खो रसे धैय बुध-जन
अन्ध कूप मे डूब रहे सब
सद - शील - धम - प्रतिहत ।

वह अपौरुषेय - ज्ञान - मिथ्या
वेद वाक्य, भ्रामक अति,
बौद्ध - भिक्षु करते प्रचार, कह
सघ शरण की दे मति ।

सघ शरण, बुद्ध शरण,
जाने का मन्त्र जाप
करते पथ मे डोल रहे
कैसी प्रहेलिका ? दुगति ?

सद - ब्रह्मज्ञान ब्रह्मचर्य - व्रत
धत 'वेद' अखिल धर्म
वाम-माग बौद्ध मत प्रताडित,
लुप्त - लुप्त यज्ञ कर्म ।

गठन शक्ति-बल पर भ्रम-छल से
चला वर नवीन - माग,
जन जन को भ्रम मे भुला रहे
मिटा रहे यज्ञ - धर्म ।

'अहिंसा परमो धर्म' लिखे
प्रस्तर - शिला - खंभ पर,
मन हर लेते जन जन का
दूषित लगता अन्तर।

शुद्धोधन - सुत जरा - मृत्यु दुख
से पिघले विरक्त - मन
राजपाट - तज चले ढूढने
सुख-धन मुडी बन कर।

स्तुत्य उनका प्रयास नत शीश
झुकाते पद - कमल पर
जन - जन, जन - हित उतरे भू पर
न मिला धम - तत्त्व पर।

ऋतम्भरा ज्ञान जिसे ऋषियो
ने पाया था प्रयत्न कर
सुलभ न था साधारण - जन से
रह गया बना दूभर।

उस अनन्त ज्ञान - राशि को
सिंधु चाहिए विशाल
अनादि - स्रोत धम का प्रवाह
शाश्वत जिसमे उछाल।

सस्कृति देश - देश की सोती
इसके अतल - गभ मे
प्रशान्त-सागर यह धम-तत्त्व
होता कवलित न काल।

अमिट-सनातन-धम एक पथ,
शाश्वत न दूसरा पथ
मत-सम्मत विवाद वाद रहित,
इसका न मिला इति - अथ।

मतवाद, पथ, सम्प्रदाय सब
छोटी नदिया छीछन,
इस विशाल सिंधु मे विलीन
बन जाते कथा - अकथ ।

वैदिक - सस्कृति, अनादि सस्कृति
अविकल सबको हितकर,
इसकी रक्षा सब प्रकार से
करते हैं विद्वद् - वर ।

कलुषित-मानव स्वार्थ भूत - अति
बढते उल्लघन कर
जीते है पल सघर्षो मे
उच्छृखल जीवन कर।

आततायियो का कोलाहल,
हत्या - अनाचार - बल
बढता जाना अबाध-गति से
कमठ - पौरुष को छल।

गति न रोकने वाला मिलता
रहा न धर्म - तत्त्व - बल
मही शून्य क्या सबल-सुजन से
क्या छिन्न धर्म - सम्बल ?

युग स्रष्टा सबुद्ध - मनीषी
रिक्त हुई क्या काशी
शरण - विहीन निर्दोष - निरीह
पा रहे यहा गल फासी।

काल भैरवी - चक्र चल रहा,
महा - प्रलय - प्रत्याशी
स्नात रक्त - धारा कापालिक,
गरजा अट्ट विहासी ।

भट्ट कुमारिल - बाल, मौन - गति
आर्द्र - हृदय, निश्चित - मन
व्रत लेता इस कलुष - ताप का
करने को उच्छेदन।

सहज-अबोध, मृदुल किशोर - तन
श्रुति - शास्त्र - ज्ञान - पूरित
दृढ़ प्रतिज्ञ बढ़ रहा चला ज्यों
अभिमन्यु - व्यूह - भेदन।

तृतीय सर्ग

तृतीय सर्ग

गुरु-गृह मे वह वर्णी करता,
वेदाध्ययन विवेचन मथन,
जैमिनि-सूत्रो का व्याख्याता,
कर्म काड का वह पडित बन।

अल्प-अवधि मे सकल शास्त्र पर,
साधिकार - चर्चा - उद्बोधन,
सिद्धान्तो का पटु प्रतिपादन,
खडन-मडन तक विलोडन।

आस्तिक, दृढ विश्वास धम पर,
साख्य - न्याय - वशेषिक - सम्मत,
विधि - विधानमय - यज्ञ - योग का,
दिखलाता प्रशस्त सयम पथ।

विस्फुरित प्रकृति, त्रिगुण-रूप धर,
जगत न माया अणु अणु ग्रथित,
पुरुष प्रकृति सयोग सृजन यह,
दीपक, अनन्त की ज्योति उदित।

प्रवहित-तटिनी की धारा-सी,
जीवन, जल-बूदो की जमघट,
आगे-पीछे, कदम-कदम चल,
बूदे भरती, जीवन के घट।

सत्वर-गति, बिन, पल क्षण चूके,
दौडी जाती वही धार मे,
पल प्रकटित, पल ओझल होती,
जन्म मरण लय-चढ उतार मे।

तम प्रकाश की आख मिचौनी,
झिलमिल क्षणद्युति क्षण तम मज्जन,
झङ्कृत वीणा जीवन-चचल,
ललित-लास्य पल ताडव-नतन।

उदय-प्रलय मे स्थिति की लीला,
अस्ति नास्ति मे सुख दुख पलता,
पौरुपमय कत्तव्य-भावना,
स्निग्ध ज्योति भर दीपक जलता।

कम-कुशल-बल, पौरुप-जीवन,
प्रारब्ध अपूव शक्ति धारा,
स्वग सुखो को भोग रहा है,
प्राणी यज्ञ याग के द्वारा।

सस्कार सिक्त आत्मा सुरभित,
अमर जीव का स्वर्गारोहण,
पुण्य कम बल, कर्मयोग से,
पयस-सुधा का शाश्वत दोहन।

कम प्रधान - विश्व - द्युति - मडित,
उज्ज्वल सूय - चन्द्र - नभ - तारे,
धुरा-चक्र पर शाश्वत गतिभर,
लगते सुन्दर प्यारे प्यारे।

प्रकृति-सुन्दरी हरी भरी यह,
पल पल रूप बदलती छलता,
प्राणी प्राणी को विविध भाति,
फल फूलो से भरी मचलती।

ऋतु अयनों के वयन भार से,
वप - मास - पल - कलन - काल वल,
वर्षा - शरद हिमर्तु ग्रीष्म - मधु,
शीतल- मधुमत शुचि - तप्त - तरल।

जीवन कटु-मधु, गरल-सुधामय,
यजन-रूप चचल-परिवतन,
कण-कण कर्म भार-नर्तित-जग,
कम - योग - मय - विश्व - विवर्तन।

यह प्रति-पल, मानव-केन्द्रों पर,
प्रज्वलित-यज्ञ की शिखर उदित,
जहा-जहा प्राण-जीवन, वहा,
समचन प्रसारण मे प्राणित।

अग्नि-तत्त्व-काल-तत्त्व मिल यह,
यज्ञ वेदिका है विस्थापित,
आत्मा व्यापक अग्नि-तत्त्व मय,
जगती कम शक्ति आप्यायित।

मनस्वान, इन्दु आदित्य वही,
तेजस वचस् पौरुष प्रचड,
कीर्ति ध्वजा, शुचि-कमकाड की,
उडती उज्ज्वल अविकल-अखड।

प्राण प्राण पर आहुति पल-पल,
सोम स्नेह घृत सामधा ईंधन,
कल्याण-सुधा-रस-वपण से ही,
बनता जीवन सुरभित-कचन।

कर नैमित्तिक-नित्य-कम, जन,
बाट रहे प्राणी मे चिर-सुख,
जन-जन का हित त्याग-वृत्ति से,
जन-जन कर-कर मिटा रहे दुख।

कुमारिल भट्ट

काम्य-कर्म से स्वग-सुधा को,
भोग रहे प्राणी जिसके बल,
नमन महाबल, सदाचार-जल,
यज्ञधूम-बल यज्ञ-कर्म-बल।

हम विराट के कण-कण की सुधि,
यजन-भाग दे प्रति-पल लेते,
जीवन देकर अखिल-विश्व को,
सुख-समृद्धि जीवन-भर लेते।

पाठ, अहिंसा-उत्सर्ग-भाव,
शुचि-स्नेह-सलिल-अभिषिक्त-प्राण,
नियमित-गति से अग्नि-व्रती बन,
करते सदैव, विश्व-कल्याण।

व्यक्ति-व्यक्ति की कम-साधना,
व्यापक-विराट, मे अर्पित कर,
कामादि-दोष, स्वार्थ-भावना,
त्याग करेंगे जब, तन नश्वर।

तभी कुशल जीवन का समझो,
अन्यथा पाप-पंकिल-मानव,
हिंसा - प्रपच - छल - लोभ - मोह,
मत्सर-मदाध होगा दानव।

कर्म की प्रतिष्ठा मीमासक,
यज्ञ - योग - सयम - शमन - दमन,
वेदानुकूल - धर्मानुकूल
देते अमूल्य-जीवन-दशन।

यज्ञ सृष्टि कर ब्रह्मा बोले
कामधेनु दाता वांछित-फल,
सुख-समृद्धि की औषध अमोघ,
यह मृत्युञ्जय-जीवन-सबल।

वेद - विहित - योग - यज्ञ - द्वारा,
सतुष्ट देवता श्रेय करे,
दे इच्छित-सुख-भोग उन्हे हम,
नित यज्ञ-भाग दे तुष्ट करें।

स्वार्थ त्याग कल्याण-भाव से,
विन चोरी प्रपच-छल-वचन,
विधि-निर्धारित-उचित भाग पर,
हम जीकर दे सबको जीवन।

प्राणी-पोषित अन्न-भाग से,
अन्न प्राप्त वर्षा से सम्भव,
पर्जन्य यज्ञ, यज्ञ कम से,
श्रुति-मानित सब कम समुद्भव।

वही अयमा, वही वरुण यम,
वह रुद्र ब्रह्म सविता धाता,
एक अग्नि के विविध रूप मे,
कम प्राणगति भर भर जाता।

प्रात मे वह उदित-मित्र नित,
अन्तरिक्ष मे सविता चचल,
अग्नि-वरुण वन सध्या मे स्थित,
तपा रहे वन इन्द्र गगन-तल।

ब्रह्मा विष्णु-महेश कम मय,
सकल-देवता कर्म-पुजारी,
उदित सृजन कम शक्ति प्राणित,
धरणी सजी कम की क्यारी।

तम पूरित सागर मे तप-बल,
आदोलित - कर्म - अनल - ज्वाला,
भर रही चेतना औ प्रकाश,
रवि - चन्द्र - उदित - मरीचि-माला।

कण-कण स्निग्ध कम-वन्धन मे,
नव-नव प्राणो की दीपाली,
प्रकृति सजाती अग-अग-मृदु,
नव-सुमन जडित, यौवन वाली।

यज्ञ-धूम से सुरभित-नभ मे,
नीले-नीले, श्याम जलद-घन,
कुजर-कुजर-से मद उन्मद,
खेल रहे कर रहे मुदित-मन।

कम चक्र चचल गति ऋतुए,
वर्षा - शरद - मधुमास - निदाघ,
बिन तोडे विधि नियम-व्यवस्था,
आती विनीत व्रत गति अबाध।

पवत धरे हरे-भरे, वन,
निझर-शीतल, निमल-प्रपात,
यज्ञ धेनु मग-छौने चरते,
छादित यज्ञ धूम, गगन-गात।

ऋषि-मुनि ब्रह्मचय-व्रतधारी,
वैखानस - सुत- वटु - श्रुति - पाठी,
त्रिकाल-सध्या उपासना से,
पावन, धरणी-माटी-माटी।

तप स्वाध्याय-प्रणवध्यान कर,
कम-योग साधन-विलीन-मन,
मख-पावक प्रज्वल कर रहे,
ब्रह्म - विचारी - ऋषि - तपसी - गण।

माता - पिता - अतिथि - गुरु-पूजन,
लघु-लघु-प्राणी तक की सेवा,
कद-मूल-फल-पुरोडाश पर,
जीवन-यापन, खर्च न खेवा।

दे विराट को ले विराट से,
वहुजन-सुख, वहुजन-हित जीवन,
परोपकार पुण्य मे लगकर,
उठा लिया है व्रत आजीवन।

हम अन्यो के सुख से हर्षित,
भुला चुके ह अपना सब-दुख,
काटे चुभते देख किसी को
हम रो पडते है सिहक-चिहुक।

हिंस्र-व्याघ्र-सिहो को हमने,
पाठ अहिंसा पढा दिया है,
एक-घाट पर अजा-व्याघ्र, मिल,
पानी पीना सिखा दिया है।

दया-अहिंसा-स्नेह-स्रोत की,
सुरसरि आज वहानी होगी,
कम योग की सफल-साधना,
जन-जन को वतलानी होगी।

जल-धारा से सिक्त-मेदिनी,
पर्जन्य-देव की प्रिया-वरा,
शस्य-श्यामला, फल-पुष्पो की,
सम्राज्ञी चिर यह वसुधरा।

हस सुपर्णा से नभ छादित,
गज सिहो हरिणो से कानन,
ऋषि-मुनियो की यज्ञधेनु से,
कण-कण धरणी मधुमय-पावन।

भौतिक-समृद्धि से वही श्रेष्ठ,
इस भू के जन मनु-कुल-नन्दन,
रवि-शशि जिनको अमर ज्योति स,
करते नित-प्रति, शत-अभिनन्दन।

आश्रम-आश्रम पावन-पावन,
प्रज्वलित - यज्ञ, ऋग्-यजु -साम,
वेद-ध्वनि नभ ओमिति-गुंजित,
धूम-सुरभि-मय प्रति प्रहर-याम।

तप-समाधि-तल्लीन-विपिन में,
त्याग वृत्ति से वीत-राग वन,
जग जीवन-कल्याण रहे कर,
उत्फुल्लवदन - मुनि - महर्षि - गण।

यज्ञधेनु वे कामदुहा वन,
पालन-पोषण करती जन-जन,
कंद-मूल-फल औ निर्मल-जल,
प्रकृति दे रही रोम-हृष तन।

वानप्रस्थी - वनवासी - द्विज,
तप शील धो रहे कलुष - तन,
ब्रह्मचर्य - व्रत - धर - द्विज - बालक,
साथ रहे कर संचित तप-धन।

अनुशीलन-चिंतन में रत वह,
आर्य-कुमारिल भट्ट खो गया,
गुरु संनिधि में श्रुति-षड्दर्शन,
पढ़-पढ़, ज्ञान-विभोर हो गया।

मेधावी वह प्रखर-बुद्धि-अति,
विस्मित - गुरु - पंडित - विद्वज्जन,
सभी मुग्ध उसका कौशलमय,
देख-देखकर शास्त्रविवेचन।

चतुर्थ सर्ग

चतुर्थ सर्ग

प्रासाद-छज्जे पर खडी, चुप,
वह राज-कुल की एक-बाला,
शुचि-स्निग्ध शशि-मुख देखती थी,
सुरसरि - तरगति-ऊर्मि - माला।

उत्तरमुखी-धारा, सुपावन,
काशी-किनारे लग खडी यो,
बध पक्ति मे अट्टालिकाए,
उर्मिशत अचपल जडी ज्यो।

सज्जित वृक्ष पर नौका विविध,
नौका-विहारी नगर के शत,
छैले छबीले अनगढे सब,
रगरेलियो मे निरत-उन्मद।

वाराणसी की वार-बधुए,
ताल-मय-मुद्रा विविध धर,
छम छम नाचती नुपूर क्वणित,
बहु-वाद्य बजते, विपुल-स्वर-भर।

कुत्सित-हृदय की वासनाए,
मुद्रित-वदन-मज्जित-सुतन पर,
बहु-विधि-अलकृत-दिव्य-पट पर,
उन चितवनो की धार, स्वर पर।

नग्न-नर्तन काम उद्दीपन,
परिहास-हासो की कला पर,
छैले-छबीले लुट रहे सब,
कर प्राणधन सब कुछ निछावर।

वह रो पडी शुद्धाचरण को,
शुचि-मूर्ति-बाला, शील वाली,
लख पाप पंकिल नाचती,
नागिन-सरीखी छवि निराली।

पावन-शील-मर्यादा मिटी
काशीपुरी अब भी खडी है,
कालिख पुती झुलसी न अब तक
हा! नाश की कैसी घडी है।

कह वैदिकी हिंसा न हिंसा
पशु मारते निर्मम पुरोहित,
कटि लाल पर धर खड्ग खींचे,
धिक् काटते गर्दन कुलिश-चित्त।

चिन्ता - भरी - बाला - दुखी -मन
आर्द्रवित आखे डबडबायी,
लख ब्रह्मचारी एक पथ पर,
करुणा हृदय की बरस आयी।

दुर्लभ ब्रह्मचर्य का जीवन
अब दृष्टि मे ये आयेंगे क्या?
वर्णाश्रम - क्रिया - शिष्टाचरण
बस स्वप्न बन रह जायेंगे क्या?

कुछ बूद टपकी अश्रुकण की
वर्णी-व्रती के पीठ पट पर,
अनमोल दाने मोतियो के
झर-झर गिरे फूटे बिखरकर।

क्या मूल्य मोती का चुकाने
यह जौहारी आया नगर मे?
तू कौन बाले! रो रही क्यो?
गभीर बोला शान्त-स्वर मे।

वह वाष्पकठाद्रवित बोली
करेगा उद्धार धम कौन?
काशी रही लग नरक रौरव
हे वर्णी हो गया क्यो मौन?

आचार-धम-विनष्ट सारे
अब वेद-पाठी ब्रह्मचारी,
क्या खोजने पर भी मिलेगे?
कैसी व्यवस्था भग सारी?

मिल बौद्ध-धर्मी वाम-मार्गी
जीवन-सलिल मे गरल घोले,
ज्वाला-अनल भडका रहे है
सम्मुख खडे है खड्ग खोले।

नास्तिक नृशस-हिंस्र से
कामादि-दोष-वासना-सिक्त,
मानवता मूल काटने को
आरुढ, तप्त रक्ताभिषिक्त।

वर्णी रे लघु-वय यह तेरी
उद्दीप्त कान्तिमय वदन सुतन,
लगते मेधावी सुतीक्ष्ण मति
कितना तेरा वेदाध्ययन?

कितनी खर प्रचड-ज्वाला है
असुर-सिधु-के वडवानल मे?
देवास्त्र अशनि होकर मे तो
कर सकते हो कुछ इस पल मे।

त्याग-मूर्ति तपसी दधीचि की
याद विवश आती है पल-पल,
अस्थि-दान कर स्वर्ग-पुरुप को
जिसने दिया महा पौरुप-बल।

सुंदर-भव्य-मूर्ति मे कुछ यदि
रंग छलावा छिपा हुआ है,
वर्णी! सम्मुख इधर न आ फिर
समझो आंसू व्यर्थ चुआ है।

मृगतृष्णा छल-प्यासा पथी
व्याकुल मानस इतस्ततस्गति,
आगमन-प्रत्यागमन फिर-फिर
नरक-ज्वाल मे ही गति-परिणति।

जलती-भट्ठी मे जल-जलकर
नरक-यातना मे पल-पलकर,
हिंसा - प्रतिहिंसा - काम - क्रोध
लोभ-मोह-मद-मत्सर-बल पर।

शान्ति खोजता स्वार्थ भरा मन
खेल रहा जीवन से प्रति पल,
कैसे सुलझेगी यह उलझन
पागल-मानव का भोलापन।

बता-भला कैसे प्रति जीवन
बदल जायगा किस प्रयत्न से?
घुसी असुरता जो जीवन में
मिट जायेगी किस सुयत्न से?

सलिल-सलिल मे गरल भरा है,
कलुप-कलुप से जग काला है,
वेद-धर्म का लोप हो रहा,
क्या तूने कुछ बल पाला है?

अयस तप्त पर सुधा-सलिलकण
लघु-छिडकन का मेल नही है ?
फन फैलाये इस नागिन पर,
जादू करना खेल नही है।

दूर दूर रवि, गगन-देश का,
शुचि-किरणो से धरा धो रहा,
पकिल-मानस सर को निर्मल
कर-कर फिर-फिर सुधा बो रहा।

फिर-फिर कल्मप फिर-फिर निर्मल
फिर-फिर पकिल फिर-फिर उज्ज्वल
दिन-रात खडी यह प्रकृति नटी
उलट-फेर का करती दगल।

निमल कर सकता है भूतल
प्रति पग अबाध गति पौरुष बल,
श्रद्धा औ सत्कार सु-सेवित
सुदृढ भूमि जीवन का सबल।

उत्सर्ग किए बिन जीवन का
भूतल-हित चिन्तन व्यर्थ-व्यर्थ,
प्राणो मे रवि को बिन पाये
बल शौय-प्रखरता व्यर्थ-व्यर्थ।

शशि की सुषमा हिमगिरि-गुरता
क्षमा क्षमा बल धैय सिंधु-बल,
शमन - दमन-बल इन्द्रिय-निग्रह
धारण कर शुचि-सत्य-धम-बल।

स्निग्ध-ज्योतिशुचिनितभरघर-घर
वेद ज्ञानमय यज्ञ कम-मय,
दया-अहिंसा-सदाचार भर
पिला ज्ञान-सित-पयस सुधा-मय।

वामे ! तेरी सकल-वेदना,
मम-स्पर्शी, हृदय-विदारक,
मुझे प्रेरणा मिली सुभद्रे,
वाणी तेरी होगी साधक।

उद्धार करू वेद धर्म का,
हू दृढ-प्रतिज्ञ मैं, धैर्य धरो,
विश्वास करो, विह्वल मत हो
उत्साह भरो, मत आह भरो।

व्रत लेता हू, उत्सर्ग प्राण
वैदिक-प्रचार मे कर दूगा,
लाज धर्म की सदाचार की,
हे देवि ! अभय हो रख लूगा।

वर्णी ! तेरी सक्षमता पर
मन कैसे विश्वास करेगा ?
उर्मिल गरल-सिन्धु उत्तालित
को कैसे तू पार करेगा ?

कामादि-दोष का अनल सिन्धु
नव-वपु-प्रसून यह मृदुल-मृदुल,
जल-भुन विनष्ट होगा पल मे,
यह ज्वालामय-मग अति सकुल।

अन्तर्मानस मे षड्-रिपु बैठे
विकल प्राण कर रहे निरन्तर,
इन्हे जीत कर ही बढ सकते,
अन्यथा यत्न सब निरर्थक।

काम-दोष पर जय-विरक्ति से
कर पौरुष के पद रख सकते
इस भीषण, कटक घन-वन मे
पथ गढ नर पुगव बढ सकते।

डर न मरण-भय राग-द्वेष से
चपल न मन, गभीर गिरा घन,
सरस्वती-सुत व्रम ध्वजा नभ
फहरा सकता ध्वनित शख-स्वन।

काम-वासना, अधम स्वार्थ तज,
स्नेह-सुधा सिन्धु-धार मे बह,
दया अहिंसा-मूल-धर्म की
सेवा कर दे ! सतत अहरह ।

निरोध क्रोध, अनन्त शक्ति वल
तू सवशक्तिधर कर्मठ बन
ब्रह्मचय वल अग्नि पुन तू,
महातेज धर तू प्रचड बन।

तू उदार बन, त्यागमूर्ति तू
लोभ न कर तू, लक्ष्मी श्रीधर,
मोह न कर तम-नाशक तू रवि,
तू ज्ञान रूप तू विवेक धर।

यश स्वरूप तू, धवल कीर्ति ध्वज
भ्रान्त न हो भ्रम रस मद पीकर,
तू श्वेत एक रस-शुभ्र कमल
ज्योति पुरुष उज्ज्वल कण सीकर।

ऐश्वय पुज तू, स्पर्धा किससे ?
ईर्ष्याग्नि -मात्सय अहकार ?
दूर-दूर कर ज्योति प्रभा तू
तू सिद्ध-पुरुष तू निर्विकार।

शक्ति रूप ब्रह्माड सूक्ष्म अति
तू महापुरुष, सक्षम मत्र विधि,
अग्नि कणों की क्या लघु गुरुता,
छोट न बड ये सब समान निधि।

निष्काम - कर्म सचित-भाव
यज्ञ-कर्म - महा सिंधु-उर्मिल,
तू विराट, तू अणु का भी अणु,
रे तू महान तू विश्व अखिल।

पौरुष प्रेरणा-मय अमर दीप
जला आज कर दे जग उज्ज्वल,
कर अखिल-कर्म शक्ति-केन्द्रित चित्त
जीव जीव को दे नव सम्बल।

शुभकामनाए साथ मेरी
भरती रहे शक्ति बल शाश्वत,
प्रखर वाग्धारा श्रुति-सम्मत
सुरसरित वत शुचि, धृत ऊर्जा शत।

पञ्चम सर्ग

पञ्चम सर्ग

निपुण कुमारिल वेद-शास्त्र मे
काशी से तक्षशिला पहुचा,
त्रिपिटक मय बौद्ध दशन पठन,
निरूपन-हेतु, बौद्ध मत चर्चा।

प्राचीन भारत का ख्यात त्रय-
विदित सस्थान - शिक्षण महान,
नालदा - तक्षशिला - विक्रम,
शिला अधिष्ठित-प्रज्ञा प्रमाण।

आते देश - विदेश से विज्ञ
ज्ञान-अर्जन को सस्थान मे,
भारत की महिमा अकित कर
कृतज्ञता भर प्राण प्राण मे।

उतारते विनीत, भारत की
श्रद्धा से गा गीत आरती
अतिहर्ष उत्फुल्ल ज्ञान-दीप्त
वह जयति भारत की भारती।

चाणक्य, भृत्य- कौमार-जीव,
राजनीतिज्ञ शल्य-चिकित्सक,
आचार्य - प्रवर तक्षशिला के
विद्याकला केन्द्र के दीपक।

फैला दिग् दिग् भारत-गौरव
अभिनन्दन करते विद्वद्-वर,
नत उन्नत देश-शीश शत-शत,
शिष्य बनकर निधि निछावरकर।

वह विश्व का गुरु, देश भारत
शत शत सम्प्रदाय सताडित,
छिन्न-भिन्न भिन्न मुडमति मे,
निपतित बिखर, खडित विदारित

बौद्ध श्रमण भिक्षु - दिग्गज भरे
जन-समादृत तक्ष-शिला उदित,
त्रिपिटक, हीन-यान महायान
शून्यवाद - निर्वाण - सुगुजित।

बौद्ध-धम आचार धम का,
नैतिक - यथाथवाद - प्रख्यात,
आत्मा परलोक कथा अमान्य
मृग-तृष्णा रविकर निकर घात।

यज्ञ-कम - काड, आत्मपीडक,
समुचित-बौद्ध - माग अष्टागिक,
मुक्ति पथ-निर्वाण एक धम,
वतमान-युग मे प्रासगिक।

सम्यक् - दृष्टि, सम्यक् - सकल्प
सम्यक् वाचा जीवन सम्यक
सम्यक् कम-सम्यक् व्यायाम
स्मृति-समाधि-श्रमण-धम सम्यक्

तृष्णा - ममता - राग द्वष मद
अहकार युत दुख जजर
पिस जन्म - जरा-मरण-चक्र मे,
मानव बनता तप्त-तेल सर।

उठता वह् वन मेघ गगन में
मंडराता बन काला बादल,
गरज-गरज भय दिखलाता
अगार अनल बरसाता काजल।

आष्टागिक विधान कर पालन
तृष्णादि पर मानव विजय कर,
पाता है निर्वाण परम पद
छल हीन-यान महायान पर।

सर्व-धम - समन्वय बन यही,
बौद्ध-दर्शन सुगम प्रतिनिधि है,
तन-मन से कर जीव पर दया
ढोता सदाचार की निधि है।

अहिंसा सत्य - अस्तेय - सहित
ब्रह्मचय - अपरिग्रह - सुसेवन
नारी - साहचर्य - लोभ - मोह
गन्ध-माल्य-नृत्य गान वजन।

सद् गृहस्थ बौद्ध-भिक्षु जीवन
दैनिक-चर्या शील-आचरण,
गिरा नियन्त्रित शोधित-सुमधुर
काषाय-वसन, स्निग्ध-आवरण।

चित्त शुद्धि, पुण्य-कर्म-सचय
कर पाप-कम का त्याग,
जीवन का सार-तत्त्व-उद्धृत
बुद्ध-सिद्ध-सुलभ-दर्शन मार्ग।

उपयोगी-उपदेश बुद्ध के
सुदृढ घर कर गये जन-मन मे,
"धर्माचरण-स्वावलम्बन से,
भिक्षु-वृन्द ! सुख है जीवन मे।"

स्वावलम्बन धर्माचरण का
झंडा ऊंचा गगन-देश में,
चले उड़ाते बौद्ध-भिक्षु-गण,
धर्म दुंदुभि बजा विदेश में।

यूरोप-एशिया, थल थल पर
बौद्ध धर्म का ध्वज लहराता,
बुद्ध शरण संघ शरण
धर्म शरण जन जन-गाता।

स्तूप-स्तूप पर खंभ खंभ पर
पत्थर-पत्थर, शिला शिला पर,
विनय-पिटक के लेख उल्लिखित,
करुणा भरते पवि, पिघला तर।

लगता जन मानस-करुणा जल
कल्लोल लहर उर्मिल-सागर,
दुग्ध-सलिल फनिल-अर्णव घर,
फूट गिरा पीयूष धरा पर।

विष्णु उठे जग पोषण का मधु-
पर्क बांटते, जीवन कण-कण,
रोमाञ्चित, सस्मित-जगती-तल
धुल गया धरा कल्मष अघ कण।

भिक्षु-भिक्षु निर्वाण पथ के
पथिक, प्राण-दीपक अर्पित कर
उत्सर्ग-भावना जगा रहे
दया-अहिंसा जगा नमित कर।

कण-कण, जीवन उत्सर्ग भूत
बुझते जीवन-दीप निहंस कर,
बहुजन सुख बहुजन हित जीवन,
दान कर रहे श्रमण भिक्षु-वर।

तम-सिन्धु, चेतना-ज्योति-सिन्धु
जिस किसी मे हो जीवन लय,
मुक्त क्लेश से होकर प्राणी,
चाह रहा है जीवन सुखमय।

मदाचार-शीतल मारुत वह,
धर्म - तत्त्व - पीयूप - सघन घन,
आज धरा पर बरस रहे हैं,
पाकर बौद्ध भिक्षु का जीवन।

आध्यात्मिक-नैतिक -समाज - बल
सब मे व्यापक, त्रिपिटक-दशन,
गगन-नाद से ध्वनित चतुर्दिक्
सद्धर्माचरण - स्वावलम्बन।

महायान - हीनयान-पालन
करते भिक्षु श्रमण धम-निरत,
ज्योति-ज्वाल-सुख-दुखमय-दीपक
निर्वाण हेतु, बोधिसत्व-व्रत।

सुचित, अधीत-बौद्ध दशन वह
अडिग-वैदिक धर्म तत्त्व पर,
आर्य-कुमारिल प्रबल मनीषी
तक उठाता सम्मुख गुरुवर।

आस्तिक-वुद्धि विश्वास-श्रुतिमत
यज्ञ-योग-बल अरुण प्रभाकर,
व्रती ब्रह्मचारी-मेधावी
विनत बोलता शुद्ध बुद्धवर।

अपौरुषेय-नित्य - श्रुति - वाणी
पशु की हिंसा नहीं वेदमत,
कुत्सित-कुतर्क-करते जन भ्रम-रत
अखिल-जीव-रक्षा, श्रुति सम्मत।

अग्नि-तत्त्वमय, निखिल-नियामक
काल-क्रम मय, यज्ञ-सृजन-गति,
पल-पल परिवतन चक्र-चलित
अक्षर-क्षर दो-रूप प्रजापति।

अनिरुक्त-निरुक्त, अमूत-मूर्त
क्थित अजायमान-जायमान,
देव-तत्त्व, भूत-तत्त्व सुयोग
यज्ञ रूप अखिल-विश्व-वितान।

देवत्त्व प्रधान ऊर्ध्व गतिमय
स्वग लोक-सुख, समृद्धि-साधन,
भूतत्व प्रधान, दुखद-जीवन
अगार-प्रज्वलित रण-प्रागण।

अत्यन्त-दुख समुच्छेद पर,
प्रागात्मवर्ती सुख-उपभोग
मुक्ति की उन्मुक्त-परिभाषा
सत् चित् आनन्द चिर-सयोग।

सुख का विनाश पुरुषाथ भला
कैसे? मुक्ति नही वाद व्यर्थ,
खोज रहे प्राणी प्राणी सुख
क्या रीता सुख निर्वाण-अर्थ?

बुझे दीपिका सहज वोध ले
निर्वाण पथ, जीवन-सबल,
तमस-सिंधु मे सुप्त-चेतना
सुख-दुख-सूना, जीवन निष्फल।

आत्यन्तिक-दुख का अभाव चिर
सुख का आत्यन्तिक शुभागमन,
निर्वाण मोक्ष का समाधान
आनन्द-भरा चित्त का स्पन्दन।

कौन चाहता सुख शाश्वत फिर
किसका स्वाभाविक-धर्म-दुःख ?
महापुरुष वह महा-चेतना
कौन बाटता जग को सुख-दुख ?

यदि प्राणी का धर्म दुःख तो
करता क्यो बचने का प्रयत्न ?
लगता प्राणी की निज-निधि-सुख
नित ढूढ रहा कर जिसे यत्न।

चेतन प्राणी भ्रान्ति-दुखो की
गठरी सिर पर लाद रहा चल-
सुख-स्वरूप वह प्रकृति-योग से,
अति क्लेश-क्लान्त जड बना विकल।

अणु-अणु नभ-घट जडत्व धर्म
व्याप्त-चेतना विविध रूप धर,
षड्-दोषो मे लिप्त क्लेश का
अनुमोदन कर रहा मोह कर।

निज स्वरूप मे स्थित जीवात्मा
सच्चिदानन्द-मय ज्योति-पुरुष
वह वीत-राग सुख-शान्ति-रूप
समदर्शी मुक्त विशेष-पुरुष।

जड चेतन सयोग प्रकृति का
यह भ्रान्ति-जनक दुःख-व्यापार,
लिप्त जीव अविवेक-पूर्ण रत
ढो रहा क्लेश का व्यथा-भार।

द्रष्टा वह निर्लिप्त-निष्काम
जड-चेतन का योग विवर्तन,
कर्म-फलो से अनासक्त रह
देखा करता मुक्त-पुरुष बन।

कस्तूरी - धृत - नाभि-देश में
मदमाता मृग-सा इधर-उधर,
ढूंढ रहा सुख-सुरभि, भुलाया
पथ-कुपथ कटकों से घिरकर।

सुख-स्वरूप, चेतन-जीवन यह
भ्रम में दुख पाल रहा भूला,
मणि-भूषित सर्पों से मिलकर
खेल रहा फूला-फूला।

द्योतित-जीवन रे सुख-स्वरूप
मोह न प्रकृति-नटी में कर,
जल-धारावत भगी जा रही
स्थिर मौन खडा बस देखकर।

आत्मा सुद्ध-वुद्ध नित्य-मुक्त
आनन्द स्वरूप-ज्योतिमय,
मल, पाप-आवरण आगन्तुक,
पल-पल जिससे जीवन दुखमय।

दु खो का तम-पुज मत्यु-घट
अहित-प्रकृति का रग-मच यह,
जहा पनपते क्लेश कर्म के,
पौधे दे दुख जीवन रह रह।

प्रकृति दीप बन ज्योतित जलती,
मन-प्राणो का लिये सहारा,
कलछल कजली फिर-फिर ज्योतित
होती इन प्राणो के द्वारा।

मलावरण वह वसन प्रकृति का
ज्योति पुरुप वह धोता प्रति-पल,
फिर-फिर भरती कलमप कजली
फिर-फिर करता वह कल उज्ज्वल।

मन-प्राणो का योग ज्योति घर
शिव विष-पायी नील कंठ धर,
गरल-घूट पी सुधा पिलाता,
ज्योति जला वह क्षितिज-अधर पर।

ऋण-धन बिजली-स्फुरित घटित पल
आंदोलित पल-पल सतत धार,
सुख की धारा वही जा रही,
खिल रहे सुमन पल-पल हजार।

मन प्राणो से दुरा-दुराकर
काला - कलुष - कल्मष - व्यवधान,
आनन्द-स्रोत वह अमर-ज्योति,
चिर-मुक्त पुरुष-कर ध्वज निशान।

देख न सकते इन आखो से
उस थल तक पहुच न पाता मन,
मूल तत्त्व, अतीत-विषयो से
आनन्द रूप उत्फुल्ल सुमन।

आकार-हीन, रहित काल क्रम
अस्तित्व किंतु उसका व्यापक,
आत्मा ब्रह्म सच्चिदानन्द वह
अच्युत - पुरुष, धर्म सस्थापक।

मन प्राण देवत्व का परिचय
देता मृत्यु नाश कर पल-पल,
तम सागर अनन्त विस्तृत को
जला ज्योति फैलाता निर्मल।

आनन्द रूप वह मृत्युजय
अमरो का स्वर्ग सजाता नित,
वह मूल-तत्त्व शिव-सर्व-शक्ति
सर्वत्र व्याप्त वह शाश्वत-मित।

षष्ठ सर्ग

न्याय - तर्क-सम्वद्ध शान्तचित्त
उत्तर-प्रति-उत्तर, स्वस्थ, सुखद,
खडन मडन सुचित विवेचन,
आदोलित अनय, न दोलित मद।

आचाय भिक्षु-गण बार-बार
कहते निस्सार - भ्रान्ति - मूलक,
आत्मा की सज्ञा मृपा - बोध,
परलोक कल्पना, छल सूचक।

ब्राह्मण-दशन-वर्णित - 'आत्मा'
कोई पदाथ सभव कैसे,
प्रत्यक्ष नही, अनुभूति नही, फिर
उसका अस्तित्व कहा कैसे ?

सुदृढ-ज्ञान, श्रुतिमत - सपादन,
आय कुमारिल विविध-तक कर,
करता विस्मत विद्वद्जन सब
साधु-साधु करते उमग भर।

सुमधुर गभीर - गिरा मे वह
अग्नि तत्त्व का बोध कराता,
काल-क्रमण मन प्राण यज्ञ की
भापा वेद-ऋचा पढ जाता।

ज्ञान-कम - उपासना, श्रुतिमत
मम विवेचन, हृदय-ग्राह्य,बन
विद्वद् जनमन मे प्रविष्ट हो,
हलचल करता स्वर उद्बोधन।

आत्मा शुद्ध - वुद्ध नित्यमुक्त,
अग्नि-तत्त्वमय व्याप्त सृजन मे,
मूलतत्त्व अवलम्बन जग का,
ज्योतिमय यह प्रतिकण -कण मे।

निरवस्थ रूप अद्वितीय वह
एक मूल तत्त्व जिसमे सृजन,
प्रपच रूप ब्रह्माड विस्तृत
निवद्धन वह गुण-धर्म-बधन।

स्थिति-परिवतन - विनाश-लीला
वैनाशिक - दशन कथित श्रमण,
सब मे अनुगत एक रूप को
मूल तत्त्व हम कहे न क्यो मन ?

स्वर्णभूषण - कगन - कुडल
रूप अनेक। परिवर्त्तन छल,
वह एक रूप अनुभूत स्वण
अनुगत सब रूपो मे अविकल।

अग्नि ज्वालमय औ ज्योतिमय
विविध रूप मे देता दशन,
लुप्त व्याप्त कण-कण मे सोता
रहित धम-गुण निराकर बन।

यदि अन्तिम परिणाम सृजन का
महासिधु तम-सान्ध-सघन-जल,
अरुणोदय की अमर ज्योति से,
कौन सजाता भव मुख उज्ज्वल ?

मन प्राणो के सहज योग से,
प्रकृति तरल तम क्षीर, सिधुवत्
उज्ज्वल-अमिताभा ज्योति शिखा,
विकसित सुरभित स्निग्ध-सुमनवत

अमृत गरल का योग सृजन यह
ज्योति-तमस की रजित ज्वाला,
देव-असुर को एक मच पर
बुला प्रकृति सजती मधुशाला।

न्याय - तर्क-सम्बद्ध शान्तचित्त
उत्तर-प्रति-उत्तर, स्वस्थ, सुखद,
खडन मडन सुचित विवेचन,
आदोलित अनय, न दोलित मद।

आचार्य भिक्षु-गण बार-बार
कहते निस्सार - भ्रान्ति - मूलक,
आत्मा की सज्ञा मृपा - बोध,
परलोक-कल्पना, छल सूचक।

ब्राह्मण-दर्शन-वर्णित - 'आत्मा'
कोई पदार्थ सभव कैसे,
प्रत्यक्ष नही, अनुभूति नही, फिर
उसका अस्तित्व कहा कैसे ?

सुदृढ-ज्ञान, श्रुतिमत - सपादन,
आय कुमारिल विविध-तर्क वर,
करता विस्मत विद्वद्जन सब
साधु-साधु करते उमग भर।

सुमधुर गभीर - गिरा मे वह
अग्नि तत्त्व का बोध कराता,
काल-क्रमण मन प्राण यज्ञ की
भाषा वेद-ऋचा पढ जाता।

ज्ञान-कर्म - उपासना, श्रुतिमत
मम विवेचन, हृदय-ग्राह्य,बन
विद्वद् जनमन मे प्रविष्ट हो,
हलचल करता स्वर उद्बोधन।

आत्मा शुद्ध - बुद्ध-नित्यमुक्त,
अग्नि-तत्त्वमय व्याप्त सृजन मे,
मूलतत्त्व अवलम्बन जग का,
ज्योतिर्मय यह प्रतिकण -कण मे।

निरवस्थ रूप अद्वितीय वह
एक मूल तत्त्व जिसमे सृजन,
प्रपच रूप ब्रह्माड विस्तृत
निवद्धन वह गुण धर्म-बधन।

स्थिति-परिवतन - विनाश-लीला
वैनाशिक - दशन कथित श्रमण,
सब मे अनुगत एक रूप को
मूल तत्त्व हम कहे न क्यो मन ?

स्वर्णाभूषण - कगन - कुडल
रूप अनेको परिवत्तन छल,
वह एक रूप अनुभूत स्वण
अनुगत सब रूपा मे अविकल।

अग्नि ज्वालमय औ ज्योतिमय
विविध रूप मे देता दशन,
लुप्त व्याप्त कण कण मे सोता
रहित धम-गुण निराकर बन।

यदि अन्तिम परिणाम सृजन का
महासिधु - तम-सान्ध सघन-जल,
अरुणोदय की अमर ज्योति से,
कौन सजाता भव-मुख उज्ज्वल ?

मन प्राणो के सहज योग से,
प्रकृति तरल तम क्षीर, सिधुवत्
उज्ज्वल-अमिताभा-ज्योति शिखा,
विकसित सुरभित स्निग्ध-सुमनवत्

अमत गरल का योग सृजन यह
ज्योति-तमस की रजित ज्वाला,
देव-असुर को एक मच पर
बुला प्रकृति सजती मधुशाला।

आत्मा चिदानन्द - ज्योति रूप,
परात्पर अनन्य - अक्षर - क्षर,
व्याप्त प्रकृति मे फूल खिलाता
अविनाशी अनन्त वह हो कर।

निर्लिप्त अकर्त्ता स्थित शरीर
अनादि - अविनाशी गुणातीत,
व्यापक सर्वत्र आकाशवत्
सूक्ष्माति सूक्ष्म, आत्मा प्रतीत।

सदा स्वभाव से असग पुरुष
न बद्ध न मुक्त अलिप्त अविकल,
प्रकृति विविध आश्रय धारण कर
निबद्ध-अबद्ध होती प्रतिपल।

ज्ञान-स्वरूप आत्म तत्त्व शुद्ध
ज्योतिर्मय मूल शक्ति चेतन,
आनन्द विज्ञानमय विमुक्त
प्राणमय अन्नमय मन बधन।

बध मोक्ष का कारण मन यह
प्रकृति पीडित लिप्त मोह जाल,
शोधित अभ्यास वैराग्य से
रे मन मूढ आत्म दृष्टि पाल।

सद्-असद् विवेक कर प्रति बार
पल-पल क्षण-क्षण प्रहर याम, लव,
सद् ब्रह्मलोक कण-कण ज्योतित,
असद् अधकार पुज यह भव।

तम से प्रकाश मे चल पुगव,
मृत्यु पर विजय कर पुरुष अमर,
कर्म कर कर्मफल मे न लिप्त,
चढ स्वर्ग, स्वर्ग से भी ऊपर।

विज्ञानमय, आनन्दमय वह,
अखड - मडल-ज्योतिर्मय वह,
शुद्ध वुद्ध चेतन-रस - स्वरूप
जग सुख बिन्दु तो सुख सिंधु वह।

जिसने जाना मूल तत्त्व को
उसने पायी अमूल्य चिर निधि,
वह तो भव क्लेश मुक्त प्राणी
अनुपम विलक्षण पौरुष उदधि।

यह शरीर पच तत्त्व निर्मित
पल पल रूप बदल जाता है,
आसक्ति मूढ-तन से करते,
यह तो सच छल का नाता है।

आत्मा अविकल गुण धम रहित,
इसे न लगता क्लेश कम दुख,
लिप्त न जन्म मरण-बन्धन से
वह सिद्ध पुरुष असग दुख-सुख।

अनासक्त - निस्पद - सिंधुवत
गभीर पुरुष पुगव महान,
अडिग विघ्न-बाधाओ से शत
वह सुख-दुख मे रहता समान।

अग-अग छिद जाने पर भी
शीत ताप मे गल जल कर भी,
खरा स्वण-सा चमका करता
सिद्ध पुरुष अमत्य मर कर भी।

अष्ट सिद्धिया चरण चूमती
अखिल सृष्टि विनीत-नत मस्तक
लोट पोट करती चरणो पर
उस सिद्ध पुरुष मे शक्ति अथक।

सर्वशक्तियों का दाता है
वह आत्मपुरुष-आनन्द पुंज,
नव नव गढती प्रकृति मूर्तियां,
उल्लसित - लास्य भर।

भू-तत्त्वों का परत फाड़कर
सूक्ष्मातिसूक्ष्म-तन वाला बन,
आनन्द-सिंधु की स्निग्ध-ज्योति मे
स्नात स्वर्ण सुख पाता यह मन।

तर्कों से विमुग्ध विद्ध जन
उक्ति कुमारिल की अकाट्य अति,
भूपति विस्मित साधु-साधु कह
स्वीकार रहे दे निज सम्मति।

भिक्षु श्रमण, पर विनत कह रहे
तर्क से परे यह मूढ ज्ञान,
मूल शक्ति, अतीत, इन्द्रिय मन,
कल्पना-छलित कैसा प्रमाण?

आत्म शक्ति-परिचय विशेष दे
सिद्ध-पुरुष का प्रतीक अविकल,
भट्ट कुमारिल ध्वज विशेष नभ
फहरा सकते हैं सित उज्ज्वल।

शास्त्रार्थ-पराजित, भिक्षु श्रमण
मुख की आभा फीकी फीकी,
जल्पना वितंडा पर तत्पर,
बुरी लग रही बात नीकी।

रोष छिपाये हृदय-देश मे
बौद्ध भिक्षु षड्यन्त्र रच रहे,
शिष्य मिला उद्दंड दंड फिर,
द बसे? किस भांति बच रहे?

निरुपाय बने बिन मणि फणीश,
विकल हतप्रभ करते बहु जल,
कहते निणय का द्वार एक,
आर्य-कुमारिल मे यदि हो बल।

सम्मुख देखो उच्च शिखर वह
गिरि का चुंबित नीलाभ-गगन,
चढकर कूदे नीचे भू पर,
चोट न खाए रेख मात्र तन।

आत्म शक्ति-बल सचित-तन मे
सिद्ध-पुरुप का परिचय प्रमाण,
दे दे तो सच सिद्ध करेंगे,
है ज्योति-रूप वह मूल-प्राण।

शस्त्र न छेदन कर सकते है,
जला न सकता पावक जिसको,
आत्म तत्त्व-मय प्राणी भय से,
गुहरावेगा फिर क्यो किसको ?

जडता-भरी प्रकृति - तम - पीडित
आत्मा, बधन मुक्त अजर-अज-
कैसे मर्कट-सा नाचेगी,
आत्म शक्ति का छूकर पद-रज।

हम प्रत्यक्ष प्रमाण मानते,
कर्त्तव्यो का मान जानते,
वितृष्णा - भाव - निर्वाण तप-बल,
जीवन लक्ष्य महान मानते।

यदि तपबल साधा सिद्ध पुरुप हो,
गिरि शृंग चढो औ कूद पडो,
आत्म शक्ति का परिचय देकर,
प्रह्लाद-सरीखा साख भरो।

खड्ग खम मे तुमम-हमम
व्याप्त प्राण-मन जल थल सब मे,
फिर भय किसका ? आत्मशक्ति-बल
दिग्-विजय-केतु फहरेगा नभ मे।

मान्य मनीषी, विद्ध सज्जन,
निणय पर उतरे विचार कर,
उभय-पक्ष के नेता कूदे
गिरि के उच्च-शिखर से भू पर।

यद्यपि भट्ट कुमारिल बहु विधि
समुचित नव-नव तक गया कर,
न्याय, बौद्ध शासन मे कुठित
हस उडा बक बना गया घर।

वह मतिमान सुदृढ सुस्थिर-चित
बोला मानो गरजा अम्बर,
अखिल-धर्म प्रमाण, श्रुति सम्मत,
आत्मा अछेद्य चिर सत्य-अमर।

वेद प्रमाणित धम नित्य वह
रक्षित पग-पग रक्षक जीवन,
विमुख धम पतनोमुख मानव
धम एक रक्षक अमूल्य धन।

रक्षक सर्वशक्ति वाला वह
जीवन अमर है किसका फिर डर ?
क्षण-भगुर नश्वर-शरीर से
मोह करेगे सुधि जन क्यो कर ?

योगस्थ कुमारिल ध्यान - मग्न,
कूद पडा गिरि-उच्च शिखर से,
तुल-तुल्य-तन, भू पर उतरा,
क्षत न हुआ गिरकर गिरिवर से।

सप्तम सर्ग

सप्तम सर्ग

फहर उठा ध्वज
श्रुति मत पूजित
आर्य कुमारिल
अथक - ज्ञान - बल
अथक - योग - बल,
अथक - प्राणबल,
अथक - कर्मबल,
अथक - धर्मबल।

पूर्ण प्रतिज्ञा
हुई आर्य की,
गौरव - गरिमा
बढ़ी चतुर्दिक्,
बौद्ध - भिक्षु - गण
नाप रहे थे,
तक्षशिला की
व्यथा आन्तरिक।

गिरि से कूद न
सके भयाकुल
मद - मोहाश्रित
आचार्य - प्रवर
लगे भुलाने
जन-समूह को,
विविध-छलों का
जाल बिछाकर।

भूप - सुधन्वा
विनत - शीश कर
रहे घोषणा
मेघ-मद्र स्वर
आय कुमारिल
भट्ट - कथितमत
सब भांति पुष्ट
श्रुतिमत - शुभकर।

चिंता - पीडा
जनक एक पर
भट्ट कुमारिल
पर घन छाया
देती बरबस
"शिष्ट - आचरण
गुरु प्रति मैंने
हा ! न निभाया।"

गुरु द्रोही इस
शापित तन को,
रखना उचित न
लगता सब विधि,
कर्म भूमि की
धरा कलंकित
होगी पा इस
तन की सन्निधि।

हर्ष न विषाद,
वह धर्म-वीर,
उल्लास - विजय
से रहित मौन,
सोच रहा
गंभीर हृदय से,
दूं मैं इस तन को
फिर दंड कौन ?

भस्म करू तन
जला-जला कर।
मद-आच मे
गला गला कर,
तुप-पावक की
धीमी - धीमी
ज्वाला मे तन
को पिघलाकर।

स्नेह भरा
कर्तव्य - घाट पर,
दीप्त - वर्तिके,
शिखा ज्वाल, भर,
अमर ज्योति की,
विकण किरणो
तिलक चढा
कर्त्तव्य भाल पर।

कर्त्तव्यो के
मान-दड पर
खरा न उतरा
यह तन लघुतर।
पच-तत्त्व मे
मिल जाये यह
पच-तत्त्व की
मूर्ति पाप घर।

अहकार - मद
सेवित तन रे।
आचार - भ्रष्ट,
अग्नि - पूत बन,
चमक स्वण सा,
दिव्याशुक मे
पा उदात्त
अमरो का जीवन।

[illegible] रखा है
[illegible]—भूमि की,
[illegible] सान्द्र
अणों में भर कर,
दिन-रात, ज्योति
जगमग बिखेर
अमर-ज्योति की
प्रभा प्रखर कर।

आगमन - गमन
प्रकृति-धर्म है,
मन-प्राणो का
दीप जला ले,
स्थापना धर्म
हित कर पौरुष
जगा प्राण नव
फूल खिला ले।

वेद-धम की
रक्षा करने
का व्रत ले तू
हुआ अग्रसर
मूल ज्ञान को
तूने खोला
निच्छल - विवेक
युत प्रस्तुत कर।

उचित सब भाति
लगता निश्चय
सदेह न कुछ
एक बात हत।
अहकार मद
मे आकर कुछ
भग हुआ है
सदाचार व्रत।

न्यायोचित क्या ?
चिन्तन करता
आर्य कुमारिल
आया प्रयाग,
गगा - यमुना
सरस्वती का
शुचि सगम तट
वह वीत - राग।

सुदृढ - सकल्प
त्याग तन - मोह
तुप-पावक के
ज्वलित ज्वाल पर,
समासीन वह
लगता मानो
अग्निदेव, घृत
तेज भाल पर।

शिथिल कर ले वध !

प्राण ! उडचल अमर,
श्वेत उज्ज्वल कमल,
त्याग यह तन-वलुप,
कलश कल्मप अनल,

अनल धूमिल-अघ !

कमच्युत - आचरण
गुरुद्रोह - अभिशाप,
मद - मोह अभिमान,
दग्ध - कुत्सित - पाप !

सुखद यमुना नीर।

तम मोह, तन बध।

तुपानल - प्रज्वलित
उपविष्ट कुमारिल
मध्य भाग सुस्थिर,
व्यजन करता अनिल।

मौन गति निस्पद।

तिल तिल जल शरीर
प्राप्त पचत्व गति,
अतिवाहक - प्राण,
दे रहे स्वग गति।

मुक्त गति निर्वंध।

जन्म 1904 ई०

जन्म-स्थान हेमजापुर खुसरूपट, पटना

पिता स्वर्गीय श्री रघुनाथ प्रसाद

शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति के स्नातक, संस्कृत हिन्दी के विद्वान, साहित्य संगीत और दर्शन का गम्भीर अध्ययन। अपने क्षेत्र के कीर्तिलब्ध चिकित्सक, बाल्यकाल से ही काव्य साधना में स्वान्तः सुखाय तल्लीन।

राष्ट्र भाषा हिन्दी, क्षेत्रीय भाषा मगही में साहित्य की विविध विधाओं को रूपायित करने वाले महाकाव्य, प्रबन्ध काव्य और गीतों के प्रति अधिक लगाव, जीवन और कला के प्रति परम्परा का सहजाग्रही बोध मे स्वर्गीय डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, नन्द दुलारे वाजपयी, डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी जैसे लोगो के सहपाठी।

सम्प्रति बख्तियारपुर (पटना) मे निवास।

प्रमुख रचनाएं महाकाव्य 'शकुन्तला', 'श्रीकृष्ण', (प्रबन्धक काल) हिन्दी—निष्कापिता, श्रीगणेश, जीमूत-वाहन, पिप्पलाद, सुकन्या। प्रबन्ध-काव्य मगही मे—वीरवर, भक्त प्रह्लाद, दण्डपाणि ।